निर्मल कुमार बोस
Nirmal Kumar Bose

10.1: उद्देश्य
10.2: परिचय
10.2.1: जीवनवृत्त
10.2.2: प्रभाव और योगदान
10.3: बोस के भारतीय समाज के अध्ययन का तरीका
10.3.1: सभ्यतागत दृष्टिकोण
10.3.2: शोध में इतिहास का महत्व
10.3.3: विज्ञान एवं अनुभववाद का अधिष्ठापन
10.34: पर्यवेक्षण का महत्व
10.3.5: सामाजिक उद्धार के लिए ज्ञान
10.4: भारत में जाति व्यवस्था
10.5: भारतीय संस्कृति पर बोस के विचार
10.5.1: संस्कृति क्या है
10.5.2: सांस्कृतिक परिवर्तन
10.5.3: संस्कृति का संपर्क
10.6: भारतीय सभ्यताः अनेकता में एकता
10.7: निष्कर्ष
10.8: भावी अध्ययन
10.9: सन्दर्भ

10.1: उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं:

1. एन के बोस के कार्यों और प्रसंगों को समझना
2. मानव विज्ञान पर बोस के शोधकार्यों का प्रभाव समझना
3. बोस के विचार, तरीकों और दृष्टिकोण का अध्ययन
4. भारतीय जाति व्यवस्था को लेकर एनके बोस के विचार जानना
5. संस्कृति, सांस्कृतिक परिवर्तन और सांस्कृतिक संपर्कों को समझना
6. भारतीय सभ्यता पर बोस के विश्लेषण का अध्ययन
7. एन के बोस के समग्र योगदान का अध्ययन करना

10.2: परिचय (Introduction)

भारत समृद्ध सांस्कृतिक और दस्तावेजी विरासतों वाली विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक है। इस देश की खासियत भौगोलिक और पारिस्थितिक, पर्यावरणीय स्थितियों की भिन्नताएं हैं, जो भारत के सामाजिक जीवन पर समग्र प्रभाव डालती हैं। विदेशों से संपर्क–संवाद, विदेशी आक्रमणों, ब्रिटिश दासता और स्वतंत्रता आंदोलन का भारत का लंबा अतीत रहा है। कई भारतीय और विदेशी शोधकर्ताओं ने भारतीय समाज – विशेषतः ब्रिटिश शासन के बाद – के विभिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन का प्रयास किया

है। हालांकि, इससे पहले भी कई यात्रा वृत्तांतों, व्यक्तिगत कथनों और धार्मिक ग्रंथों में भारत के लोगों के सामाजिक जीवन का विवरण मिलता है, लेकिन ब्रिटिश काल में वैज्ञानिक शोधों के प्रारंभ होने के साथ भारत का परिचय मानव विज्ञान (Anthropology) से हुआ। ब्रिटिश प्रशासन ने शासन–सत्ता के लिए आंकड़ों का संग्रहण (Data Collection) करने के साथ दस्तावेजों के रखरखाव की व्यवस्था प्रारंभ की। इस तरह भारतीय समाज के मानव विज्ञान के अध्ययन की शुरुआत पश्चिमी मानव विज्ञानियों ने की। कालान्तर में भारतीय मानव विज्ञानियों ने भी शोधकार्य प्रारंभ किए। प्रारंभिक शोध करने वालों में जिनके नाम सामने आते हैं, उनमें एल के ए अय्यर, एस सी रॉय, डीएन मजूमदार, जीएस घुर्ये आदि हैं। निर्मल कुमार बोस भी इन प्रारंभिक भारतीय शोधकर्ताओं में से एक हैं, जिन्होंने भारत में मानव जाति विज्ञान के अध्ययन की बुनियाद रखी। बोस उत्कंठ अध्येता, बहुआयामी लेखक, जुनूनी फील्डवर्कर और साहसी यात्री थे। बोस प्रखर राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने कई आंदोलनों में हिस्सा लिया। वस्तुतः इन आंदोलनों के जरिये उन्हें अपने अकादमिक लक्ष्यों को हासिल करने का भी अवसर मिला। बोस के लेखन का विस्तार से समन्वेषण करने से पूर्व हम उनके जीवन और कार्य के बारे में कुछ जानकारी हासिल करेंगे।

10.2.1: जीवन परिचय (Biographical Sketch)

निर्मल कुमार बोस (1901–1972) का जन्म 22 जनवरी 1901 को बंगाल (अविभाजित) के कलकत्ता (अब कोलकाता) में हुआ था। बोस अपने माता–पिता की इकलौती संतान थे। उनके पिता डॉक्टर थे, जिनका नौकरी की वजह से लगातार तबादला होता रहता था। यही वजह है कि बोस की विद्यालयी शिक्षा बिहार, बंगाल और उड़ीसा में हुई। वर्ष 1921 में बोस ने भूगर्भशास्त्र में बीएससी कर कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज से स्नातक किया। इसके बाद उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज में ही एमएससी भूगर्भशास्त्र (Geology) में दाखिला लिया, लेकिन उन्हीं दिनों महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन से प्रभावितहोकर उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया और सक्रिय रूप से आंदोलन में उतर गए। बाद में बोस उड़ीसा चले गए। वहां मन्दिरों की स्थापत्य कला को लेकर उनका रुझान बढ़ा और वह उड़ीसा में मंदिरों को देखने आने वाले लोगों को इनके बारे में व्याख्यानात्मक तरीके से जानकारी देने लगे। ऐसे ही एक अवसर पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति ने बोस को सुना तो उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने बोस से मुलाकात की और उन्हें अपने विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान विभाग से परास्नातक का अध्ययन पूर्ण करने का सुझाव दिया। बोस को यह प्रस्ताव भा गया। वर्ष 1923 में उन्होंने एक बार फिर प्रेसीडेंसी कॉलेज में एमएससी में दाखिला ले लिया, लेकिन इस बार विषय मानव विज्ञान चुना। इस दौरान बोस ने 'भारत में बसंतोत्सव' शोध प्रबंध (Thesis) लिखा, जिसके जरिये उन्होंने भारत में सांस्कृतिक विस्तार का वर्णन किया। स्नातकोत्तर कर लेने के बाद बोस को उड़ीसा (अब ओडिशा) के 'जुआंग' जनजाति के लोगों पर अध्ययन के लिए रिसर्च फेलोशिप हासिल हुई। वर्ष 1930 तक बोस जुआंग लोगों के बीच रहे, लेकिन फिर महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह में शामिल होने के लिए निकल पड़े। वर्ष 1931 में बोस को ब्रिटिश पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। जेल में रहने के दौरान बोस ने

महात्मा गांधी पर अध्ययन के साथ विचार और लेखन भी किया। जेल से छूटकर बोस एक बार फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय लौट आए। यहां वह मानव विज्ञान विभाग से जुड़ गए और बतौर असिस्टेंट लेक्चरर पुरातत्व (Archeology) का अध्यापन प्रारंभ करते हुए कई खुदाई कार्यों में हिस्सा लिया। वर्ष 1942 में महात्मा गांधी के आह्वान पर भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ तो बोस एक बार फिर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। ब्रिटिश शासन ने फिर बोस को गिरफ्तार कर लिया। इस बार उन्हें तीन साल के लिए दमदम जेल में बंद रखा गया। हालांकि, जेल से छूटने के बाद उन्हें लेक्चररशिप दोबारा मिल गई, लेकिन वर्ष 1946 में वह महात्मा गांधी के 'नोआखाली अभियान' में शामिल हो गए। भारत की ब्रिटिश दासता से आजादी के बाद बोस वर्ष 1958 से 1972 तक दक्षिण एशिया क्षेत्र में भाषा, पुरातत्व, स्थापत्य, संस्कृति–सभ्यता आधारित मानव विज्ञान जर्नल 'मैन इन इंडिया' के सम्पादक रहे। इसके अलावा बोस 'एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' के निदेशक (1959–1972) भी रहे। 1967 से 1972 तक बोस ने एससी–एसटी कमिश्नर का पद भी संभाला। मानव विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य पर बोस को बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की ओर से वर्ष 1948 में एन नडेल गोल्ड मेडल से नवाजा गया। वर्ष 1966 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया।

10.2.2: बोस का योगदान–प्रभाव (Influence and Contribution of Bose)

यहां हमें यह समझना आवश्यक है कि बोस ने किन तत्कालीन परिस्थितियों में लेखन कार्य प्रारंभ किया। बोस ने जब अपना शोध, लेखन शुरू किया, उस दौर में भारत ब्रिटिश उपनिवेश था और देशभर में स्वतंत्रता को लेकर व्यग्र उत्कंठा थी। बोस उस बंगाल में पले–बढ़े, जो ब्रिटिश दासता से आजादी हासिल करने के लिए एक के बाद एक कई आंदोलनों का गवाह बन रहा था, इसके साथ ही वहां सामाजिक सुधारों को लेकर भी आंदोलन तेज हो रहे थे। बोस ने उस वक्त स्नातक किया, जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता का संघर्ष चरम पर था। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया, जिसने उनके कार्यों को अलग पहचान दिलाई। 19वीं–20वीं शताब्दी में बोस की तरह ही अधिकतर भारतीय शोधकर्ता, लेखक भारत की सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बावजूद राष्ट्रीय एकता, समग्रता और अखंडता को लेकर गंभीर थे। वह दौर स्वतंत्रता संघर्ष और स्वतंत्रता के बाद नये राष्ट्रवाद के उदय का था। ऐसे में आजादी के बाद यह आवश्यक था कि भाषा, धर्म, जाति, परंपरा, रीति–रिवाज और विरासती पहचानों की विभिन्नताओं के बावजूद उन तत्वों को तलाशा जाए जो भारत के अलग–अलग क्षेत्रों, संस्कृतियों को एकसूत्र में बांधते हों और इनके जरिये भारत को समग्र रूप से एक बनाएं। अकादमिक तौर पर देखें तो बोस के दौर में भारत में मानव विज्ञान अध्ययन–अध्यापन की स्थापित शाखा नहीं थी। बोस भारत के शुरुआती दौर के मानव विज्ञानियों राधाकमल मुखर्जी, जीएस घुर्ये, डीपी मुखर्जी और अन्य में एक थे। इन भारतीय विज्ञानियों के शोध–अध्ययन की शुरुआत करने तक ब्रिटिश विशेषज्ञ ही प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए भारतीय जनसमूहों से संबंधित जानकारियां एकत्र कर रहे थे। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश विशेषज्ञों की ओर से किए जाने वाले शोधकार्यों और फील्डवर्क का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश उपनिवेश को मजबूत करने का ही था। चौधरी

(2007) ने बोस को ऐसे वास्तविक भारतीय विचारक और स्वदेशी मानवविज्ञानी बताया है, जिन्होंने सिर्फ औपनिवेशिक उद्देश्यों से भारतीय समाज के अध्ययन पर सवाल खड़े किए।पश्चिमी तौर तरीकों से मानव विज्ञान के अध्ययन का प्रशिक्षण लेने के बावजूद बोस ने भारतीय सभ्यता के अध्ययन को लेकर अपना खुद का तरीका विकसित किया। बोस ने कला, मंदिर स्थापत्य, पुरातत्व, भौगोलिक–भूगर्भीय, जाति व्यवस्था, जनजाति यानी हर पहलू पर भारतीय सभ्यता के विकास को लेकर लेखन किया। इसके अलावा गांधी के विचारों पर उनका लेखन भी महत्वपूर्ण है। बोस ने बंगाली और अंग्रेजी, दोनों भाषाओं को अपने लेखन का माध्यम बनाया।उनका लेखन सिर्फ किताबों, निबंध, शोधप्रबंध, रिपोर्ट, आर्टिकल के रूप में ही उपलब्ध नहीं है, बल्कि उन्होंने आत्मकथात्मक चित्रण (Autobiographical sketch), उपाख्यान (Ancedotes), यात्रा वृत्तांत (Travelogues) और कथनात्मक (Narrative) लेखन भी किया है। उन्होंने कल्चर एंड सोसायटी इन इंडिया (1967), कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी (1961), पीजेंट लाइफ इन इंडियाः ए स्टडी इन इंडियन यूनिटी एंड डायवर्सिटी (1961), द स्ट्रक्चर ऑफ हिन्दू सोसायटी (1961) समेत कई किताबें लिखीं। मैन इन इंडिया, द कलकत्ता रिव्यू, साइंस एंड कल्चर, कलकत्ता ज्योग्राफिकल रिव्यू जैसे जर्नलों में उनके कई लेख प्रकाशित हुए। देश के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण के विवरण पर आधारित उनकी व्यक्तिगत डायरी 'परिव्रजाकर डायरी' (एक यात्री की डायरी) यात्रा वृत्तांतों का एक अहम प्रामाणिक दस्तावेज है।प्रारंभ में बोस फ्रेंज बोआ और एल्फ्रेड क्रोबर के विभिन्नताओं के सिद्धांत और पार सांस्कृतिक विश्लेषण से प्रभावित थे। अपने पहले शोधप्रबंध भारत में बसंतोत्सव में उन्होंने इसी विभिन्नताओं के सिद्धांत को ध्यान में रखकर काम किया, जिसमें उन्होंने समान सांस्कृतिक विशेषताओं वाले भौगोलिक क्षेत्रों पर अध्ययन करते हुए विस्तार के केंद्र का विश्लेषण किया। इसी तरह एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के निदेशक पद पर रहते हुए मैटीरियल कल्चर ट्रेट सर्वे (MCTS) के जरिये उन्होंने भारत का सांस्कृतिक नक्शा तैयार किया। इसके माध्यम से उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों की भाषाई, पारंपरिक समानताओं के आधार पर देश के सांस्कृतिक क्षेत्रों (Cultural Zones) का निर्धारण और पहचान की। इस अध्ययन ने बोस को भारत की विभिन्न मिट्टी के बर्तन निर्माण, धातुशिल्प, हथकरघा,

Box 1.1: The Lifestyle of N. K. Bose

बोस बेहद कम निजी जरूरतों वाले व्यक्ति थे। साधारण जीवन और उच्च विचार उनके जीवन का लक्ष्य था। उनके जीवन को साधारणतम बनाए रखने के लिए अन्वेषणों का प्रमाण उनकी वेशभूषा थी, जिसे वह खुद डिजाइन करते थे। वह ऐसे कपड़े पहना करते थे, जिनमें कई जेब हों। उनकी हर जेब का खास उपयोग होता था, जिनमें वह मग, सीटी, टूथब्रश और टार्च से लेकर तमाम दैनन्दिन उपयोग की वस्तुएं रखा करते थे। इससे टैगोर की आविष्कारशीलता और गांधी का सूक्ष्मवाद स्पष्ट परिलक्षित होता था। –भट्टाचार्य, प्रो. एनके बोसः माय टीचर (2002:08)

मंदिर–मठ स्थापत्य जैसी हस्तशिल्प तकनीकों, ग्रामीण परिवेश, जनजातीय परंपराओं के वृहद् विश्लेषण का अवसर प्रदान किया। बोस बोआ के शोध के अधिष्ठापन के सिद्धांत और वैज्ञानिक प्रमाणों के बिना

शोध के व्यापकीकरण की आलोचना के दृष्टिकोण से प्रभावित थे। यही वजह है कि बोस के इन अध्ययनों का लक्ष्य भारत की विभिन्नताओं को समझने–जानने के लिए प्रचुर मात्रा में साक्ष्य और आंकड़ों का एकत्रीकरण था। बोस मैलिनोव्स्की के कार्यपरक दृष्टिकोण से भी प्रभावित थे। उन्होंने 'सोल ऑफ कल्चर' (Soul of Culture) सिद्धांत का उपयोग अपनी पुस्तक कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी (1961) में किया। हालांकि, उन्होंने कार्यपरक सिद्धांत के उस अनैतिहासिक (Ahistorical) दृष्टिकोण को नकार दिया, जो सभ्यता–संस्कृति के विकास में इतिहास के योगदान को महत्वपूर्ण नहीं मानता है।

बोस जिस व्यक्ति के कार्यों से सर्वाधिक प्रभावित हुए, वह थे महात्मा गांधी। गांधी का बोस के व्यक्तिगत जीवन से लेकर अकादमिक उपलब्धियों तक गहरा असर था। बोस महात्मा गांधी के नजदीकी लोगों में शामिल थे और नोआखाली अभियान के दौरान वह गांधी के निजी सचिव भी रहे। महात्मा गांधी के निधन तक बोस का उनके साथ लंबा संबंध–संपर्क बना रहा। बोस ने खुद को गांधी के विचारों के अध्ययन और उनकी स्थापना के लिए समर्पित कर दिया था। बोस ने गांधी और उनके दर्शन पर अपनी पुस्तकों सेलेक्शन्स ऑफ गांधी (1934), स्टडीज ऑन गांधीज्म (1940), माय डेज विद गांधी (1953) और महात्मा गांधी एंड वन वर्ल्ड (1966) में समग्र–व्यापक लेखन किया है।

10.3: बोस के अध्ययन का तरीका (Bose's approach to study Indian Society)

10.3.1: सभ्यतागत दृष्टिकोण (Civilizational Approach)

भारत अपनी विभिन्नताओं और समृद्ध सांस्कृतिक विरासतों के लिए जाना जाता रहा है। यह दुनिया की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। लिखित परंपराओं की विस्तृत श्रृंखला के साथ यहां जनजातियां, आदिवासी, ग्रामीण और शहरी समुदाय एकसाथ रहते हैं। एनके बोस, सुरजीत सिन्हा और बर्नार्ड कॉन ने भारतीय समाज और सामाजिक ढांचे को समझने के लिए भारत की इस समृद्ध और विभिन्नताओं वाली विरासत को ही आधार बनाया है। इसीलिए इस परिप्रेक्ष्य को ही सभ्यतागत दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया। इसके तहत गांव, जाति, जनजाति जैसे भारतीय समाज के विभिन्न तत्वों पर विचार किया जाता है। इस तरह सभी समूह और समुदाय सभ्यता के अभिन्न अंग के तौर पर देखा–समझा जाता है। यह दृष्टिकोण सभ्यता के विभिन्न पहलुओं के अंतरसंबंध, ऐतिहासिक स्थिति, परिवर्तन (Change Transformation) को भी सामने रखता है। इस प्रकार, अनेकता में एकता (Unity in Diversity) विश्लेषण का मुख्य फोकस बन जाता है। (नागला 2013)

10.3.2: शोध में इतिहास की भूमिका (Role of History in Research)

इतिहास और परिवर्तन एनके बोस के मानव विज्ञान अध्ययन के दो मुख्य अवयव रहे। बोस के विश्लेषण–शोध में इतिहास की अहम भूमिका रही। भारतीय समाज के अध्ययन में इतिहास ने बोस को न सिर्फ अतीत में झांकने का अवसर प्रदान किया, बल्कि विषयाध्ययन की कार्यशैली तय करने में भी मदद की। हालांकि, जिस इतिहास के जरिये बोस ने अपना अध्ययन आगे बढ़ाया, वह सांख्यिक नहीं बल्कि परिवर्तनशील रहा। इसके जरिये बोस ने भारतीय समाज के निश्चित संरचना में रहते हुए समय के साथ खुद को विकसित करने के तरीकों को अभिलिखित किया। इस प्रकार सामाजिक ढांचे को

लेकर निश्चित समयावधि में अभिलेखीय परिवर्तन आता है। उदाहरण के लिए, बंगाल में जाति व्यवस्था के अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि उपनिवेशकाल से पहले जाति व्यवस्था के कारण बंगाल में जो सामाजिक संरचना थी, वह ब्रिटिश आगमन के बाद धीरे–धीरे नष्ट होने लगी थी। (बोस 1961)

10.3.3: विज्ञान, अनुभव और अधिष्ठापन (Science, Empiricism & Inductive Method)

बीसवीं सदी में मेलिनोव्स्की, रेडक्लिफ ब्राउन जैसे अधिकतर मानवविज्ञानियों का मानना था कि मानव जाति का अध्ययन विज्ञान है। यही वजह थी कि वे निरीक्षण, आंकड़ों के संग्रहण, वर्गीकरण, कूटबद्धिकरण, पुष्टि, सत्यापन के जरिये उद्देश्यों के सुरक्षित अनुमान स्थापित करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया को इस तरह के अध्ययन के लिए आवश्यक मानते थे। बोस भी अध्ययन के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उपयुक्त मानते थे, किन्तु वह अनुभववाद के जरिये अधिष्ठापन को भी अध्ययन का हिस्सा बनाने वाले मानवविज्ञानी थे। अधिष्ठापन का अर्थ उस दृष्टिकोण से है जो आंकड़ों के संग्रहण से प्रारंभ होता है और फिर सिद्धांत के प्रतिपादन तक पहुंचता है। यह निगमन (Deductive) विश्लेषण के उस तरीके से उलट है, जिसमें पहले किसी सिद्धांत की परिकल्पना की जाती है और फिर शोध के जरिये इसे सिद्ध किया जाता है। अधिष्ठापन के तरीके में सिद्धांत शोध के बाद आता है। इस पूरी प्रक्रिया में प्रचुर मात्रा में आंकड़े जुटाए जाते हैं, वर्गीकृत किए जाते हैं इसके बाद पैटर्न और नियमों के जरिये इनका परीक्षण किया जाता है जो सिद्धांत के प्रतिपादन में सहायता करता है। बोस की यह विधि बोआस के समान थी जो अधिष्ठापन के तरीके पर दृढ़ थे। वस्तुतः बोस बोआस और उनके दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित थे।

10.3.4: पर्यवेक्षण का महत्व (Importance of Observation)

चक्रवर्ती (2002) ने बोस की व्यक्तिगत डायरी परिव्राजकर नोट्स के अध्ययन से पाया कि बोस एक उत्सुक प्रेक्षक और समालोचक थे। चक्रवर्ती ने डायरी में उनके फील्डवर्क की विस्तृत जानकारी का अध्ययन किया। वह एक उदाहरण देते हैं, जिसमें बोस ने प्रागैतिहासिक मनुष्य और उसके कौशल का वर्णन किया है। उस काल में यह माना जाता था कि आदिम मनुष्य सभ्यताहीन (Uncivilized), निम्न और अविकसित था। बोस ने प्रागैतिहासिक और आज के मानव समुदाय के शिल्पकौशल का तुलनात्मक अध्ययन कर इस धारणा पर सवाल खड़ा किया। बोस ने अपने अध्ययन में वनों में रहने वाले लोगों की उत्कृष्टता और शक्ति के उन बिंदुओं को स्थापित करने पर जोर दिया, जिनके बूते वे बेहद सीमित संसाधनों और विषम परिस्थितियों के बावजूद जीवन को संभव बना पाने में सक्षम रहे। बोस ने अपने शिक्षक से दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को साथ रखते हुए अपने पर्यवेक्षण करने की सीख पाई थी। इसी तरह उन्होंने अपने छात्रों को भी स्वतंत्र विचार करने के लिए हमेशा प्रेरित किया। यही वजह थी कि बोस अपने छात्रों को वह विषय बताते थे, जिस पर अध्ययन किया जाना है और इसके लिए उन्हें फील्ड में भी भेजा जाता था, लेकिन उन्हें इस तरह प्रशिक्षित किया गया कि वे स्वतंत्र अध्ययन कर सकें। बोस मानते थे कि पर्यवेक्षण मानव विज्ञान अध्ययन का महत्वपूर्ण साधन है। इसी कारण बोस अपने छात्रों को शोध के प्रचलित तरीके यानी पहले से तैयार प्रश्नावली और कार्यानुक्रम (Schedule) के बिना फील्ड में

भेजते थे, ताकि वे अपने नजरिये से आकलन कर सकें। इस तरह उनके छात्र पूर्वकल्पित विचारों के बजाय फील्डवर्क के दौरान सामने आने वाली चुनौतियों से स्वयं व्यावहारिक तौर पर अध्ययन करने में सक्षम बने (भट्टाचार्य 2002)।

10.3.5: सामाजिक उद्धार के लिए ज्ञान (Knowledge for Social Emancipation)

बोस के लिए शोधकार्य सिर्फ ज्ञान हासिल करने का माध्यम नहीं था, बल्कि इसे वह सामाजिक और राजनीतिक उद्धार का जरिया मानते थे। यही वजह है कि अपने एकेडमिक कॅरियर को दांव पर लगाकर भी उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में उतरने की जरूरत महसूस की। वह मानते थे कि ज्ञान का उपयोग समाज के कल्याण और बेहतरी में होना चाहिए। उड़ीसा में जुआंग जनजाति पर शोध के दौरान वहां रहते हुए बोस ने किसी समुदाय पर संकट के दौरान शोधकर्ता की भूमिका पर गहराई से विचार किया। इसकी वजह यह थी कि तत्कालीन जुआंग समुदाय कुपोषण का शिकार था और मलेरिया बड़ी तेजी से फैल रहा था, लेकिन बोस चाहकर भी तब उनकी मदद नहीं कर पा रहे थे (op. cit. Bose 2007)

Box 1.2: Science and Politics of N. K. Bose

वैज्ञानिक शोध मेरी वास्तविक वृत्ति (स्वधर्म) रहा। पूर्ण विवेक के साथ राजनीतिक अभियानों से जुड़ना मेरे लिए मात्र आकस्मिक कर्तव्य (अपधर्म) का पालन ही था। –निर्मल कुमार बोस, माय डेज विद गांधी (1974:67)

10.4: भारत में जाति व्यवस्था (Caste System in India)

जाति व्यवस्था भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो भारतीय समाज को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और अन्य दूसरे आयामों से अभिन्न रूप से संबद्ध है। अधिकतर शोधकर्ताओं ने भारतीय जाति व्यवस्था का अध्ययन अलग–अलग तरीके से अपनी सुविधानुरूप किया है, लेकिन बोस ने भारतीय जाति व्यवस्था पर जो अध्ययन किया, वह न सिर्फ विभिन्न जातियों की संस्कृति और जीवनशैली को सामने लाता है, बल्कि इनमें समय के साथ आए परिवर्तनों और जनजाति समुदायों के अंतरसंबंधों को भी प्रकट करता है। बोस के अनुसार वर्तमान में जाति व्यवस्था अतीत के अवशेष मात्र हैं। प्रारंभिक दौर में इस व्यवस्था का लक्ष्य सेवा के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति था। यह सामाजिक परस्पर निर्भरता और एकता की ऐसी व्यवस्था थी जो लोगों के पारस्परिक संबंधों के साथ मानव और समाज के संबंधों का अहम सूत्र थी। जाति व्यवस्था का अर्थ ऐसे सामाजिक संगठन से था, जिसमें उत्पादन और वितरण जैसी आर्थिक गतिविधियां अलग–अलग जातियों के बीच वितरित, स्थापित थीं। भारतीय जाति व्यवस्था में व्यक्ति के व्यवसाय का निर्धारण जन्म (वंशानुगत) से था और सदस्यों के लिए विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करना कर्तव्य था। बोस ने अपने अध्ययन में यह पाया कि, जाति व्यवस्था ग्रामीण समुदाय में किसी जाति के सदस्यों को गैरप्रतिद्वंद्वी, आत्मनिर्भर और सुनिश्चित रोजगार की उपलब्धता के माध्यम से आर्थिक और सांस्कृतिक सुरक्षा प्रदान करने का जरिया थी। इसके अतिरिक्त जाति व्यवस्था विभिन्न सांस्कृतिक व्यवसायों को अपनाने की स्वतंत्रता प्रदान करती थी। बोस यह भी

मानते हैं कि दृढ़ और श्रेणीबद्ध जाति व्यवस्था किसी व्यक्ति को यह स्वतंत्रता भी प्रदान करती थी कि वह संन्यास (Asceticism) से जुड़ सके। यह स्वतंत्रता उस स्थिति में किसी 'सेफ्टी वाल्व' की तरह काम करती थी, जब कोई व्यक्ति स्वयं को व्यवस्था के अंतर्गत खुद को दबाव में या अनुपयुक्त पाता था (सरस्वती 2002, बोस 2007)। फिर भी ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ जाति व्यवस्था नये आर्थिक दौर के साथ धीरे–धीरे नष्ट होती गई। बोस मानते हैं कि जाति व्यवस्था देश की आर्थिक विभिन्नताओं के कारण पारंपरिक–शास्त्रीय वर्ण व्यवस्था पर पूरी तरह खरी नहीं उतर सकी, लेकिन उन्होंने अपने अध्ययन में जाति व्यवस्था के उन लाभकारी पहलुओं को ग्रहीत करने का पूरा प्रयास किया है जो आज भी उपयोगी हैं। (ibid.) सभ्यतागत दृष्टिकोण पर शोध करते हुए बोस ने जाति व्यवस्था को भारतीय समाज, संस्कृति और सभ्यता का अभिन्न अंग माना। उन्होंने जाति को सामाजिक एकजुटता का जरिया मानते हुए इसे विभिन्नताओं वाले देश में एकता और एकीकरण का माध्यम माना। बोस के अनुसार जाति व्यवस्था के कारण हिन्दुत्व सांस्कृतिक महासंघ (Federation of Cultures) बन गया। इससे यह विभिन्न जातियों के बीच जीवनशैली, भोजन, वेश आदि के आधार पर विभिन्नताओं और अंतरों वाले सांस्कृतिक व्यवसायों का जरिया भी है। दूसरी ओर, अंबेडकर ने जाति व्यवस्था को निम्नतर व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया है, जो अलग–अलग जाति के सदस्यों की भूमिकाओं, सामाजिक स्थिति, अधिकार और दायित्वों का निर्धारण कर श्रेणीबद्ध असमानता (Graded Inequality) का निर्माण करती है। अंबेडकर के अनुसार यह श्रेणीबद्ध व्यवस्था समाज के एक वर्ग (उच्च वर्ण) को विशेषाधिकार (Privileges) प्रदान करती है, वहीं अन्य वर्गों (निम्न वर्ण और अस्पृश्य) के उत्पीड़न का माध्यम बनती है। जबकि बोस के अनुसार जाति वयवस्था उत्पीड़क–शोषक नहीं है, बल्कि यह आर्थिक व्यवस्था और सांस्कृतिक तत्व है।

10.5: भारतीय संस्कृति पर बोस के विचार (Bose on Culture in India)

10.5.1: संस्कृति क्या है: बोस (1961) मानते थे कि संस्कृति मानव समुदाय की जीवनप्रद आवश्यकताओं की संतुष्टि से संबंधित है। संस्कृति मनुष्य की जैविक जरूरतों की पूर्ति पर संतुष्टि का सिद्ध माध्यम है। पशुओं से इतर मनुष्यों के भाषा वह साधन है जो क्षमताओं के उपयोग और दूसरे मनुष्यों से सीखने का जरिया है। यह न सिर्फ सांस्कृतिक गतिविधियों को स्थिरता और संस्थापन प्रदान करती है, बल्कि इन्हें एक से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करने का भी माध्यम बनती है। भोजनशैली, जीवनशैली, रीति–रिवाज, विश्वास, वेशभूषा संस्कृति के वे पहलू हैं जो परस्पर संबद्ध हैं। इससे इनमें से किसी एक में भी परिवर्तन दूसरे पहलू में परिवर्तन का कारण बन जाता है। इस प्रकार संस्कृति एकीकृत है और इसे इसके घटकों में विभाजित नहीं किया जा सकता है, हालांकि बोस ने वैज्ञानिक विश्लेषण की सुविधा के लिए इन्हें अलग करके देखा है। चूंकि बोस मानते हैं कि संस्कृति मानवजीवन की आवश्यकताओं से जुड़ी है, उन्होंने हिन्दू धर्मग्रंथों में वर्णित मानवजीवन लक्ष्यों– अर्थ (आर्थिक इच्छाएं), काम (दैहिक इच्छाएं) और मोक्ष (आध्यात्मिक इच्छाएं) में संस्कृति को बांटकर शोध किया है। बोस बताते हैं कि इन तीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य पारंपरिक तरीकों के अनुरूप कार्य–व्यवहार करता है, जिसे

आचार कहा जाता है। आचार की चार अवस्थाएं, वस्तु (पदार्थ), क्रिया (गतिविधि), संहति (सामाजिक संस्था) और तत्व (व्यक्तिगत विश्वासों पर आधारित विचारसार) हैं। बोस किसी व्यक्ति के पारिवारिक जीवन के उदाहरण से इसे समझाते हैं, जिसके माध्यम से वह आचार के घटक वस्तु, संहति और तत्व के जरिये अर्थ और काम की संतुष्टि प्रदान करता है। (बोस 1961:10–21)

1.5.2: सांस्कृतिक परिवर्तन: बोस भारतीय सभ्यता का यूरोपीयन सभ्यता से तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। बोस बताते हैं कि पूंजीवाद और व्यक्तिवाद के हावी होने से यूरोप की सभ्यतागत भावना पर गहरा असर हुआ है। यूरोपीय सभ्यता व्यक्तिवादी और प्रतिस्पर्द्धी है जो वहां की कला, स्थापत्य और खेलों से दृष्टिगोचर होता है। दूसरी ओर, प्राचीन काल से भारतीय सभ्यता जाति व्यवस्था से संबद्ध रही है, जो सामाजिक एकता और परस्पर संबंधों, निर्भरता पर आधारित है। बोस बताते हैं कि जाति व्यवस्था ने भारत में प्रतिद्वंद्विता और व्यक्तिवाद को बढ़ावा देने के बजाय एकता और सामूहिकता को पोषित किया। इससे आचार और व्यवहार की आंतरिक व्यवस्था ने भारतीय सभ्यता को विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान किया है। ये विश्वास और विचार संस्कृति के मूल की स्थापना करते हैं, जिनमें समय और अनुभव के साथ परिवर्तन होता है, जिन्हें संस्कृति की आत्मा माना जाता है। (pp.35) बोस मानते हैं कि संस्कृति स्थिर नहीं है, यह संस्कृति की वर्तमान भूमिका से बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति और संपूर्ण संतुष्टि नहीं हो पाने की स्थिति में समय और जरूरतों के हिसाब से परिवर्तनशील है। संस्कृति का अनुसरण करने वाले लोग जरूरतों और संकटकाल के हिसाब से रचनात्मकता के माध्यम से इसमें परिवर्तन करते जाते हैं। इस प्रकार जीवन और संस्कृति के बीच निरंतर परस्पर क्रियात्मक संबंध बना रहता है। दुर्खेम (1982), क्रोबर और कुछ मार्क्सिस्ट कम्युनिस्ट विचारकों के संस्कृति को 'सुपर ऑर्गेनिक' मानने के विचार से बोस सहमत नहीं होते। यहां सुपर ऑर्गेनिक का अर्थ ऐसी व्यवस्था से है जो व्यक्ति से ऊपर हो और उस पर बलपूर्वक प्रभाव डालती हो। इसके कारण व्यक्ति संस्कृति के लिए गौण और अधीन बन जाता है। दुर्खेम मानते हैं कि भारत में जाति व्यवस्था और धार्मिक रीतियां व्यक्ति को बाधित करती हैं, और इनका असर इतना व्यापक है कि इन्हें स्थापित करने में व्यक्ति का भी कोई मूल्य नहीं समझा जाता है। यहां तक कि व्यक्ति खुद भी समझौता कर इन्हें स्वीकार कर लेता है। दूसरी ओर, बोस (1961) बताते हैं कि संस्कृति परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संस्कृति को अनुसरित करता है। व्यक्ति को संस्कृति बाधक नहीं बनाती है, बल्कि सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करने का अवसर प्रदान करती है। यह मानव जीवन और संस्कृति का परस्पर संबंध है जो संस्कृति को संतुलन (Equilibrium) की स्थिति में रखता है। यद्यपि यह संभव है कि रूढ़ियों के चलते परिवर्तन के उदाहरण कम मिलें।

10.5.3: संस्कृतियों का संपर्क (Contact of Cultures): अपनी प्रख्यात पुस्तक 'कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी' (Cultural Anthropology, 1961) में बोस ने मानव और संस्कृति के संबंधों की व्याख्या करने के साथ इस पर भी प्रकाश डाला है कि जैविक आवश्यकताओं के अनुरूप किस तरह सांस्कृतिक परिवर्तन होता है। बोस दो बिंदुओं पर फोकस करते हैं, पहला– कोई सांस्कृतिक विषय/वस्तु (Cultural Object)

किस तरह एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक हस्तांतरित होता है। दूसरा– दो संस्कृतियों का परस्पर संपर्क किस तरह दोनों संस्कृतियों के आंतरिक स्वरूप में परिवर्तन को प्रेरित करता है, इसके जरिये बोस यह भी अध्ययन करते हैं कि ये परिवर्तन सामान्य और व्यापक (Generalised) होते हैं या नहीं। बोस स्पष्ट करते हैं कि यदि आर्थिक और सामाजिक रूप से कोई संस्कृति सफल है तो उसके स्वरूप में बदलाव नहीं होते, लेकिन यदि यह किन्हीं कारणों से नाकाम रहती है (विशेषतः आर्थिक पहलू के लिहाज से) तो लोग पलायन करते हैं। यह पलायन समान वातावरण, परिस्थितियों वाले भूक्षेत्र की ओर जाने के रूप में भी हो सकता है और कुछ ऐसी नयी व्यवस्थाओं को अपनाने से भी, जो समाज की आर्थिक स्थिति को नुकसान से रोकें। उदाहरण के लिए बोस बताते हैं कि जन्म नियंत्रण (Birth Control) के जरिये जनसंख्या को संतुलित कर खाद्य शृंखला और जीवन मानकों को स्तरीय बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार लोगों की स्थापित रीतियों में परिवर्तन से भी बचा जाता है। भारतीय इतिहास से सांस्कृतिक संघर्ष के कुछ उदाहरणों के जरिये बोस सांस्कृतिक परिवर्तन की वजह रही मानसिक परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हैं। इसके अलावा वह उन कारकों पर भी प्रकाश डालते हैं जो विशेषताओं के चयन और मानव के जैविक स्वरूप को व्याख्यायित करते हैं। बोस ने इन्हें मानव जाति विज्ञान की सांस्कृतिक समस्याएं बताया है।

(1) उड़ीसा की स्थिति (The Case of Orissa)

(i) **हिन्दू उड़ीसाः** दसवीं से 13वीं सदी तक उड़ीसा स्वतंत्र और समृद्ध राज्य था। उस काल के राजाओं की मंदिरों के निर्माण में विशेष रुचि थी, जिसने स्थापत्य, हस्तशिल्प, चित्रकारी आदि के माध्यम से लोगों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए। वे विद्वत ब्राह्मणों का सम्मान करते थे और उन्हें दानस्वरूप जमीनें देते थे। किन्तु विभिन्न आक्रमणों के दौरान हुई लूटपाट में उड़ीसा की समृद्धि नष्ट होती गई और राजाओं से संबद्ध कलाकार रोजगार के अवसर समाप्त होने से निर्धन होते गए। इसका सीधा असर उड़ीसा की संस्कृति को कला और ज्ञान के नष्ट होने का बड़ा नुकसान हुआ। आर्थिक रूप से सामने आए इस अभाव ने उड़ीसा की संस्कृति के कुछ विशेष लक्षणों को समाप्त कर दिया, आर्थिक व्यवस्थाओं को अस्त–व्यस्त कर दिया और जाति व्यवस्था के स्वरूप में भी परिवर्तन किया (पहले यह अनुवांशिक था)। उदाहरण के तौर पर बोस बताते हैं कि खंडेत, जो पहले सैनिक हुआ करते थे, बाद में किसान बन गए।

(ii) जुआंग जनजातिः हिन्दू धर्म से परिचय से पूर्व जुआंग जनजाति की आजीविका का साधन शिकार और स्थानांतरण कृषि थे। ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना के बाद जंगलों को संरक्षित किया गया तो ये दोनों साधन लुप्त होने लगे। इस दौरान अकाल का सामना करने के बाद जुआंग जनजाति को हिन्दुओं की तरह खेती के परिष्कृत स्वरूप को अपनाना और हल जैसे उपकरणों का उपयोग सीखना पड़ा। लेकिन, इसमें असफल रहने पर उन्होंने टोकरियां बुनना, अन्य लोगों के लिए जंगल से ईंधन (लकड़ी) की आपूर्ति करने का काम प्रारंभ किया, यह कार्य मुख्यतः जुआंग महिलाएं करती थीं। इससे होने वाली आय से वे नमक, कपड़े, शराब आदि खरीदा करते थे। इस तरह वे हिन्दू आर्थिक व्यवस्था से गहरे

जुड़ते चले गए और धीरे–धीरे हिन्दू समाज की एक नयी जाति के तौर पर सामने आए। जुआंग लोग अपने जनजातीय पारंपरिक त्योहारों के अलावा हिन्दुओं की तरह लक्ष्मी, धर्म जैसे हिन्दू देवी–देवताओं का पूजन करते हैं। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक परिवर्तन के फलस्वरूप उनकी भाषा में भी काफी अंतर आया। इसी तरह का असर छोटा नागपुर के मुंडा समुदाय में भी नजर आता है। हिन्दुओं और मुंडा समुदाय के लोगों के मतभेदों के दौरान मुंडा लोग ईसाई मिशनरीज के संपर्क में आए, जिसके कारण मुंडा जनजाति के अधिकतर लोग धर्मांतरित हो गए, जिसका असर उनकी पुरातन सांस्कृतिक रीतियों में बदलाव के तौर पर सामने आया। उन्होंने टेलरिंग, जालियां बुनने, बढ़ई आदि का व्यवसाय करना प्रारंभ कर दिया। लेकिन, उड़ीसा में आर्थिक परिवर्तन उतना गहरा नहीं रहा, जितना मुंडा और जुआंग जनजातियों में सामने आया। पारंपरिक व्यवसायों में नुकसान होने पर लोगों ने अपने ही स्थानों पर रहते हुए दूसरे व्यवसायों को अपनाना शुरू किया, लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में धार्मिक विश्वासों और सामाजिक परंपराओं पर अधिक प्रभाव नहीं हुआ। दूसरी ओर, जुआंग जैसी पर्वतीय जनजातियों के मामले में आर्थिक तौर पर मजबूत दूसरी संस्कृतियों ने उन्हें जीवन (Survival) के लिए उत्पादन में नाकाम अपनी पुरानी व्यवस्था को छोड़कर नये सक्षम रिवाजों को अपनाना पड़ा। बोस बताते हैं कि मुंडा और जुआंग जनजातियों की संस्कृति के नष्ट होने के पीछे एक बड़ा कारण दोनों जनजातियों के लोगों में अपनी परंपराओं को लेकर गर्व का अभाव रहा। वह कहते हैं कि सांस्कृतिक संपर्क की प्रक्रिया में दूसरी संस्कृति में विलय होने वाली संस्कृति के लोगों में यदि गर्व की अनुभूति रहती है तो निश्चित रूप से परिवर्तन का परिणाम भी अलग हो जाता है।

(2) बंगाल (The Case of Bengal)

बोस बंगाल के इतिहास के उदाहरण भी अपनी पुस्तक में रखते हैं। इसके तहत वह एक पुरातन संस्कृति की आर्थिक असफलता के फलस्वरूप नयी आर्थिक व्यवस्था की घुसपैठ, दूसरी संस्कृति की उपस्थिति और अपनी पुरातन रीतियों को छोड़ने वाले समाज में आत्मसम्मान और गर्वानुभूति में कमी का वर्णन करते हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के आगमन और पूंजीवाद की स्थापना के साथ बंगाल में आर्थिक तौर पर संकट सामने आया, जिसने जाति व्यवस्था के स्वरूप में बड़ा बदलाव किया। बोस बताते हैं कि इसकी शुरुआत तत्कालीन सभी भारतीय वर्गों में ब्रिटिश सभ्यता से खुद को कमतर (Inferior) मानने से हुई। इसके कारण तत्कालीन बंगाली समाज में ईसाई प्रभाव बढ़ता गया। इस हीनभावना के चलते जहां एक ओर भारतीयों में यूरोपियन लोगों के प्रति मातहती, चापलूसी का भाव बढ़ा वहीं दूसरी ओर द्वेष और घृणा भी विकसित होती गई। बोस इसे अधीन लोगों में विजेताओं के प्रति पनपने वाली भावना बताते हैं। बोस तर्क देते हैं कि किसी जनजाति या समुदाय के विदेशी सभ्यता के तत्वों को अपनाने के पीछे जो कारण होते हैं, उनमें या तो आत्मसम्मान का पूर्ण अभाव अथवा आत्मसमर्पण (जैसा कि मुंडा और जुआंग जनजातियों में रहा) का भाव होता है या फिर यह भी हो सकता है कि आत्मसम्मान का भाव तो हो, लेकिन दूसरी संस्कृति को अपनाने से इस भाव में हानि की कोई आशंका न हो। किन्तु जब आत्मविश्वास का स्तर बेहद कम हो और लोग दूसरी सभ्यता से जुड़ने के कारण अपनी सांस्कृतिक

पहचान के नष्ट होने को लेकर आशंकित हों तब वे रक्षात्मक और कठोर हो जाते हैं। बोस बताते हैं कि बंगाल के मामले में भारतीय समाज ने आर्थिक मोर्चे पर भले ही पूर्ण आत्मसमर्पण किया हो, लेकिन आत्मसम्मान के अवशेषों के कारण लोगों के मन–मस्तिष्क में सांस्कृतिक रूप से रक्षात्मक भाव था। यह भाव कई बार मनोविकार का स्वरूप ले लेता है। बोस जैविक संरचनाओं के आधार पर बताते हैं कि जब कोई प्रजाति किसी दूसरी प्रजाति के कारण विलुप्त होने का डर महसूस करती है तो असामान्य लक्षणों का विकास करती है, संस्कृतियों के मामले में भी कुछ इसी तरह के रक्षात्मक उपक्रम सामने आते हैं। बोस बताते हैं कि हिन्दुत्व के पराभवकाल में सामने आई कई विकृतियों से इसे समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, हिन्दुओं में प्राचीनकाल से गाय का विशेष सामाजिक, धार्मिक महत्व रहा है। लेकिन गोहत्या को लेकर मुस्लिमों के प्रति उपजी विरोधी भावना के गोमांस खाने वाले अन्य समुदायों/लोगों के प्रति समान रूप से प्रतिरोधी नहीं होने के कारण गायों का संरक्षण सीधे तौर पर मुस्लिम विरोधी (Anti Mohammedan) प्रतिमान बन गया। अब हम बोस के मानव और संस्कृति के संबंध और जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप संस्कृति में बदलाव सिद्धांत के हिसाब से देखेंगे तो पाएंगे कि मुंडा, जुआंग और बंगाली समाज ने दूसरी संस्कृति के उन तत्वों को अंगीकार किया जो आर्थिक रूप से लाभकारी और शक्ति के प्रतीक थे। इस प्रकार बोस यह तर्क देते हैं कि सांस्कृतिक पसंद (Preference) आर्थिक और शक्ति के पहलू के आधार पर निर्दिष्ट होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि सांस्कृतिक क्रियाकलाप आत्मरक्षण की सहजवृत्ति से प्रेरित होते हैं। बोस के अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि सांस्कृतिक संपर्क में जिन चार तत्वों का विशेष महत्व है, वे केन्द्रित विचार (The Central Ideas), मानसिक अभिवृत्ति (The Mental Attitude), संस्कृति के तत्व (Content of Culture) और संस्कृति को संरक्षित करने वाला आर्थिक ढांचा (Economic Framework which Sustains Culture) हैं। किसी संस्कृति के अधीन हो जाने की स्थिति में परिवर्तन का अंतिम परिणाम उसे मानने वाले लोगों की मानसिक अभिवृत्ति पर मूलतः निर्भर करता है। यही वजह है कि यदि किसी संस्कृति का अनुकरण करने वाले लोगों में अपनी संस्कृति के प्रति आत्मसम्मान और गौरव का भाव कम हो तो उसमें गहरे परिवर्तन की संभावनाएं उन संस्कृतियों के मुकाबले अधिक रहती है, जिन्हें मानने वालों में अपनी संस्कृति को लेकर आत्मसम्मान का भाव हो। हालांकि, यदि अधीन हो चुकी संस्कृति में इस तरह का कुछ भाव बचा हो तो वह रक्षात्मक तरीकों से कुछ विशेष तत्वों को विकसित कर लेती है। ऐसी स्थिति में पुराने विचारों–संस्थाओं को अधिक मान दिया जाता है, नयी पहल की कमी स्पष्ट दिखती है, जबकि कुछ असामान्य तत्व भी उभरते हुए दिखते हैं। जब ये तत्व संस्कृति को विलुप्त होने से बचाने के अपने लक्ष्य में सफल हो जाते हैं तो स्वतः धीरे–धीरे कम होते जाते हैं और संस्कृति एक बार फिर विकास के पथ पर सामान्य रूप से बढ़ने लगती है। अपने शोधकार्यों के दौरान बोस ने पाया कि पूर्वी भारत की जनजातियां जब हिन्दू जातियों के संपर्क में आईं तो उन्होंने हिन्दुओं की जीवनशैली और सांस्कृतिक पद्धतियों को अपना लिया। शीघ्र ही वे हिन्दू सामाजिक ढांचे और श्रेणियों में शामिल हो गईं। इसी तरह घुर्ये ने तर्क दिया कि भारतीय जनजातियों ने धीरे–धीरे हिन्दू जीवनपद्धति और मूल्यों को अपनाया जो

दो संस्कृतियों के अंतरसंबंधों का परिणाम था। उन्होंने जनजातियों को 'पिछड़ी हिन्दू जातियां' बताया है, जो धीरे–धीरे हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में आत्मसात हो गईं (op.cit. Nagla 2013:101). घुर्ये की ही तरह बोस भी जनजातियों को भारतीय सभ्यता का अहम हिस्सा मानते हैं। बोस बताते हैं कि अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की जनजातियों की तरह भारत की जनजातियां अलग–थलग (Isolated) नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने वृहद् हिन्दू समाज से संपर्क–संवाद स्थापित किया (Chaudhury 2007)। इस प्रकार (जैसा पहले भी वर्णन किया गया है) अपनी पुरानी जीवनशैली को छोड़कर खेती अपनाने वाली जुआंग जनजाति धीरे–धीरे हिन्दू समाज में आत्मसात कर ली गई। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दू सभ्यता से जुड़ने की इस प्रक्रिया में जुआंग जनजाति के लोगों ने अपनी रीतियों, परंपराओं, सांस्कृतिक अपनाने, अनुसरण करने की स्वतंत्रता है। बोस इसे 'जनजातियों के आत्मसातीकरण की हिन्दू पद्धति' कहते हैं और जनजातियों के आर्थिक परिवर्तन के लिए बहुत अनिवार्य करार देते हैं (Bose 1941)

10.6: भारतीय सभ्यताः विविधता में एकता (Indian Civilization: Unity & Diversity)

भारत भौगोलिक क्षेत्रों, धर्म, भाषाओं, पारंपरिक पहचानों, समुदायों और विभिन्न कारकों में विभिन्नताओं और विविधताओं वाला देश है। राष्ट्रीय निर्माण के दौरान भारतीय सभ्यता का अध्ययन करते हुए भारतीय विविधताओं के बीच समानता वाले तत्वों–कारकों पर फोकस किया। बोस का यह कार्य उस दौर में एकता और राष्ट्रीय अखंडता का भाव विकसित करने के लिए अति महत्वपूर्ण था। बोस ने भारतीय सभ्यता को विविधताओं में एकता के तौर पर प्रस्तुत किया है, जिसके लिए उन्होंने शास्त्रीय, धार्मिक पाठ्य, प्रशासनिक दस्तावेजों, ग्रामीण परिवेश और जाति व्यवस्था के समग्र अध्ययन को आधार बनाया है। बोस ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत की विशाल भौगोलिक और पर्यावरणीय परिस्थितियां, मिट्टी की गुणवत्ता, जलस्रोतों की स्थिति और अन्य भौतिक संसाधन अलग–अलग क्षेत्रों के लोगों की जीवनशैली और भोजनपद्धति पर असर डालती हैं। उष्णकटिबंधीय देश होने के कारण भारत प्रारंभ से ही कृषिप्रधान देश रहा है। फसल उपज के मौसम में देशभर में त्योहारों का आयोजन किया जाता है और पशु–पक्षियों का पूजन होता है। यह बताता है कि प्रकृति जीवन के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पहलुओं को भी प्रभावित करती है। हालांकि, भारत में सांस्कृतिक रूप से विविधताएं हैं, लेकिन विभिन्न क्षेत्रों और भाषा समूहों के बीच संस्कृति से जुड़े कुछ ऐसे तत्व हैं जो समान हैं और एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं (Behura and Mohanti 2002). बोस मानते हैं कि यह एकरूपता ही भारतीय सभ्यता है जो जाति व्यवस्था की परंपरा से विकसित हुई है और सदियों से भारतीय लोगों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को संचालित करती रही है। इसके अतिरिक्त विभिन्न धार्मिक पंथों, उपासना विधियों और संतों द्वारा धार्मिक–सामाजिक सुधारों के लिए किए जाने वाले देशाटन ने भारतीय सभ्यता को एकसमान बनाने में मदद की। बोस तर्क देते हैं कि भारतीय समाज की प्रकृति 'पिरामिड' की तरह है। यहां जन के बीच विश्वास और महत्वाकांक्षाओं के लिहाज से आधार बिन्दु (निम्न जातियों, श्रमिकों और निम्न वर्गों) में अधिक विविधता मिलती है, जबकि उच्च वर्गों के बीच कम विविधता रहती है। (Sinha 1972:13)1959 से 1964 तक एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे

ऑफ इंडिया के निदेशक रहने के दौरान बोस ने भारतीय समाज के राष्ट्रीय स्तरीय शोध के लिए पांच चरणों को अपनाने का सुझाव दिया, जो निम्नवत हैंः

1. पहला चरणः पूरे भारत में संस्कृति के तत्वों के वितरण का अध्ययन और इनके वितरण के पैटर्न, भाषाई विभिन्नताओं का मानचित्रात्मक वर्गीकरण

2. दूसरा चरणः मिट्टी के बर्तनों के निर्माण, धातुशिल्पकला जैसी प्राचीन भारतीय शिल्पकलाओं और तकनीकों का अध्ययन

3. तीसरा चरणः भारत के विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक व्यवस्थाओं में शिल्प और जाति व्यवस्थाओं का अध्ययन

4. चौथा चरणः मठ, राज्यों (Kingship) और मठों जैसे भारतीय समाज के प्राचीन स्थापत्यों का अध्ययन

5. पांचवां चरणः भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जनजातीय अभियानों, जातियों और व्यवसायों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन (Sinha 1972, Saraswati 2002 and Nagla 2013)

अपने शोधकार्यों को लेकर बोस बेहद धुनी थे और चाहते थे कि युवा शोधकर्ता मानवजाति विज्ञान शोध को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करें। उन्होंने जातियों, बर्तन निर्माण, बुनकर, तेल निर्माण जैसे भारतीय प्रचलित व्यवसायों, जीवनशैली के तरीकों, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन को लेकर आंकड़ों के संग्रहण पर जोर दिया। यद्यपि चौधरी (2007) पाते हैं कि बोस के लिए भारतीय सभ्यता हिन्दू सभ्यता से जुड़ी थी। भारतीय सभ्यता पर बोस के अध्ययन अधिकतर हिन्दू समाज के विभिन्न संस्कृतियों से संक्रमण पर आधारित हैं, जो बताते हैं कि हिन्दुत्व धीरे–धीरे इन संस्कृतियों के शीर्ष पर पहुंचता है। हालांकि, हिन्दुत्व को लेकर उनका विचार धर्म से अधिक संस्कृति का है, जो सबको आत्मसात करता है।

10.7: निष्कर्ष (The Conclusion)

जैसा कि हमने इस इकाई में अध्ययन किया, निर्मल कुमार बोस ने भारत के सामाजिक मानवजाति विज्ञान के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान किया है। हालांकि, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी सक्रिय भूमिका के चलते उनके एकेडमिक कॅरियर पर प्रभाव पड़ा। वह अपने शोध कार्यों पर पूरा और वांछित समय नहीं दे सके। फिर भी राजनीतिक रूप से किए गए उनके कार्य उनके मानजाति विज्ञान दृष्टिकोण पर साफ प्रतिबिंबित होते हैं। समाजशास्त्र और मानवजाति विज्ञान के छात्र होने के नाते संस्कृति, सांस्कृतिक संपर्क और जनजातीय अखंडता–एकता पर बोस के विचार हमारे अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारतीय सभ्यता के अध्ययन का जो दृष्टिकोण उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह राष्ट्रीय अखंडता और एकीकृत राष्ट्र के निर्माण में सहयोग करता है। हालांकि, जनजातीय समाजों के एकीकृत राष्ट्र की मुख्यधारा में अंततः समन्वित होने के उनके विचार पर समालोचनात्मक विश्लेषण संभव है।

10.8: भावी अध्ययन (Further Readings)

• Sinha, S. (ed.) (1972) “Anthropology of Nirmal Kumar Bose” in Aspects of Indian Culture and Society: Essays in Felicitation of Professor Nirmal Kumar Bose, Indian Anthropological Society, Calcutta, 1-22.

• Bhattacharjee, N. (2008), “Through Thick and Thin Reflections on Nirmal Kumar Bose,” Indian Anthropologist, Vol. 38, No. 2, 1-17.

• Bose, Pradip Kumar (2007), “The Anthropologist as ‘Scientist’? Nirmal Kumar Bose” in Uberoi, P., Sundar, N. and Deshpande,S. (ed.) Anthropology in the East: Founders of Indian Sociology and Anthropology, Permanent Black, New Delhi, 290-329.

10.9: सन्दर्भ (References)

• Behura, N.K. and Mohanti, K.K. (2002), “Bose on the Unity of Indian society and Culture” in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed.), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 197-205.

• Bhattacharya, B (2002), “Professor Nirmal Kumar Bose: My Teacher,” in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed.), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 6-9.

• Bhattacharya, R. K. (2002), “A Few words about Professor N.K. Bose and his work,” in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 1-5.

• Bose, N.K. 1941. "The Hindu Method of Tribal Absorption," Science and Culture, Vol. 7: 188- 94.

• Bose, N.K. (1961), Cultural Anthropology, Asia Publishing House, Bombay.

• Bose, Pradip Kumar (2007), “The Anthropologist as ‘Scientist’? Nirmal Kumar Bose” in Uberoi, P., Sundar, N. and Deshpande,S. (ed.) Anthropology in the East: Founders of Indian Sociology and Anthropology, Permanent Black, New Delhi, 290-329.

• Chakrabarti, S.B. (2002), “Paribrajaker diary: An Enquiry into its Anthropological input” in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 147-156.

• Chaudhury, S (2007), “Civilizational Approach to the Study of Indian Society: N. K. Bose and Surajit Sinha”, The Eastern Anthropologist, Vol.60, No.3-4: 501-508.

• Durkheim, Emile. 1982. The Rules of Sociological Method. Intro. Steven Lukes; trs. W.D. Halls; London: Macmillan, 1-159.

• Nagla, B.K. (2013), “Civilizational Perspective: N.K. Bose”, Indian Sociological Thought, Rawat Publications, New Delhi, 341-354.

• Saraswati, B. (2002), “Professor Nirmal Kumar Bose : A Gandhian Anthropologist” in Bhattacharya, R. K. and Sarkar, J. (ed), Passage Through Indian Civilization, Anthropological Survey of India, Kolkata, 10-39.

• Sinha,S. (ed.) 1972. “Anthropology of Nirmal Kumar Bose” in Aspects of Indian Culture and Society: Essays in Felicitation of Professor Nirmal Kumar Bose, Indian Anthropological Society, Calcutta, 1-22.